भारत की विविधता को धर्मनिरपेक्षता की जरूरत क्यों है?

भारतीय संविधान की मूल अवधारणा में 'धर्म-निरपेक्ष' शब्द को शामिल नहीं किया गया था। संविधान के निर्माताओं सहित डॉ.बी.आर. अंबेडकर ने भी संविधान की प्रस्तावना में 'धर्म निरपेक्ष' शब्द को शामिल नहीं किया था। इतना ही नहीं, बल्कि उस समय प्रोफेसर के.टी. शाह के द्वारा इस शब्द को शामिल करने पर बहस के दौरान उन्होंने एक प्रकार का मौन धारण कर लिया था। वहीं 'समाजवाद' शब्द को संविधान में शामिल करने को लेकर डॉ. अंबेडकर ने इसका स्पष्ट विरोध यह कहकर किया कि 'आगामी पीढ़िया, अपने आर्थिक रास्ते खुद ही तय करेंगी।''

- 'धर्मनिरपेक्ष' और 'समाजवाद' शब्द संविधान के 42 वें संशोधन में शामिल किए गए। यह समय इंदिरा गांधी के द्वारा आपातकाल लगाए जाने का था। इन शब्दों को संविधान में तब शामिल किया गया जब विरोधी दल के अधिकांश नेता जेल में थे। बाद में जनता पार्टी के कार्यकाल के दौरान हुए 44 वें संशोधन में भी इन शब्दों को हटाया नहीं गया। क्या इसका अर्थ यह लगाना चाहिए कि जनता पार्टी के तत्कालीन नेता इन शब्दों को संविधान में रखने के समर्थक थे?
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें, तो ऐसा लगता है कि हिन्दु अधिकारों वाली राजनैतिक शक्तियों के विस्तार के साथ ही भारत में धर्मनिरपेक्षता के भविष्य पर सवाल उठ खड़े हुए हैं। सन् 1980 से 1990 तक भारतीय जनता पार्टी के द्वारा चलाए गए अभियानों में लगातार धर्मनिरपेक्षता को मुस्लिमों के तुष्टिकरण और वोट बैंक की राजनीति के लिए चलाया गया एक शास्त्र मात्र बताया जाता रहा। भारतीय जनता पार्टी ने आगे अपनी बात को बखूबी संभालते हुए यह जुमला छेड़ा कि हमें सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता हैंसन् 2014 में बनी नरेंद्र मोदी की सरकार ने सीधे-सीधे इस शब्द का दुरुपयोग किए जाने की बात कर दी और कहा कि भारतीय मुसलमान को धर्म निरपेक्षता ने ही गरीब बना रखा है।
- इसी प्रकार देश में फैली असहिष्णुता पर चर्चा करते हुए गृहमंत्री ने भी धर्मनिरपेक्ष शब्द के दुरुपयोग की बात कही। साथ ही उन्होंने हिंदुत्व में भी धर्मनिरपेक्षता के समान ही विचारधारा होने के प्रमाण दिए। वर्तमान भारतीय जनता पार्टी के नेता विविधता को हमारे

देश की शक्ति के रूप में देखते हैं। परंतु वे यह भूल जाते हैं कि धर्मनिरपेक्षता की नींव पर ही विविधता का ढांचा खड़ किया गया है। इसके बिना विविधता ढह सकती है।

- चाहे डॉ. अंबेडकर ने 'धर्म निरपेक्षता' शब्द को संविधान में शामिल करने पर मौन साध लिया हो, परंतु अगर उनके इस कथन पर विचार करें कि 'मैंने हिंदू के रूप में जन्म लिया है, परंतु उस रूप में नहीं मरूंगा' और 'हिंदू धर्म मात्र धर्म नहीं है', तो पता चलता है कि वे कहीं-न-कहीं अपनी सोच में धर्म निरपेक्षतावादी ही थे। उनकी धर्म निरपेक्षता मानवीय गरिमा में थी। वे चाहते थे कि धर्म के नाम पर मनुष्य का मनुष्य द्वारा ही दी जाने वाली समस्त पीड़ाओं से मुक्ति मिले। अगर आज वे जीवित होते, तो अपने इस धर्मनिरपेक्ष मनोभावों के साथ हिदुत्व की राजनीति के सबसे बड़े विरोधी होते।

सवाल उठता है कि अगर हमारे संविधान निर्माता और गांधी-नेहरू जैसे देश निर्माता यह मानते रहे कि हमारी विविधता का आधार धर्मनिरपेक्षता पर खड़ा है, तो उन्होंने इसे संविधान में शामिल क्यों नहीं करना चाहा। इसका उत्तर इतिहासकार सब्यसाची भट्टाचार्य नेहरू और अंबेडकर के समानता और न्याय का पक्षधर होने में ढूंढते हैं। एक बार फिर यहां प्रश्न खड़ा हो जाता है कि भारत जैसे बहुधर्मी समाज में धर्म निरपेक्षता की अवधारणा के बगैर समानता और न्याय की स्थापना कैसे की जा सकती है?बहरहाल, समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष जैसे शब्दों को संविधान के मूल रूप में शामिल न करने का कोई सही कारण हमें ज्ञात नहीं हो सकता। परंतु हिंदू अधिकारों के हिमायती दलों के लिए इस बात का फायदा उठाकर 'धर्म-निरपेक्षता' के संविधान से हटाने की बात करना भी गलत है।

'दि हिंदू' में प्रकाशित शेख मुजर्बिर रहमान के लेख पर आधारित

AFEIAS